P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-7* ISSUE-12* August- 2020
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित समकालीन लोकतांत्रिक व्यवस्था

Contemporary Democratic System Depicted In Nagarjuna's Novels

Paper Submission: 14/08/2020, Date of Acceptance: 21/08/2020, Date of Publication: 24/08/2020

इन्दिरा कुमारी
सहायक प्राध्यापिका,
हिन्दी विभाग,
बी.आर.ए. बिहार
विश्वविद्यालय,
मुजफ्फरपुर, बिहार, भारत

सारांश

नागार्जुन जन सरोकारों के हिमायती साहित्यकार के रूप में स्थापित हैं। समतामूलक समाज की स्थापना और वास्तविक स्वतंत्रता का आग्रह उनकी रचनाओं में प्रमुखता से मिलता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हमने लोकतांत्रिक शासन प्रणाली को अपनाया। संविधान की प्रस्तावना के माध्यम से समाजवाद की स्थापना, नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्वतंत्रता देने जैसे उद्देश्य निर्धारित किए।

किन्तु, इन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु लोकतांत्रिक तरीके से निर्वाचित सरकार में भी पूर्व की व्यवस्था में भागीदार हित समूहों की प्रभावी भूमिका कायम हो गयी। नाम और स्वरूप तो बदला; किन्तु, निहितार्थ और प्राथमिकताएं जन साधारण के व्यापक हित में न होकर विभिन्न संकीर्ण हित समूहों के अनुकूल रहने लगीं। शासन–तंत्र के उपर इन हित समूहों के प्रभाव, इनकी अनुचित गतिविधियों को मिलने वाला राजनीतिक संरक्षण और प्रश्रय, प्रशासन में अनुचित राजनीतिक हस्तक्षेप, चारित्रिक दुर्बलता के वशीभूत होकर अनुचित लाभों, वंशवाद, चन्दा संस्कृति जैसे तत्त्व शासन–तंत्र पर हावी होने लगे। फलस्वरूप, नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्वतंत्रता देने के उद्देश्य की प्राप्ति की दिशा में अग्रसर होने की जगह समाज में आर्थिक विषमता बढ़ी। समय के साथ बढ़ती चेतना ने सामाजिक भेदभाव, जातीय ध्रुवीकरण और जातिगत राजनीति को बढ़ावा दिया, जिसकी चरम परिणति हमें वर्तमान में देखने को मिल रही है। पाँचवे दशक से सातवें दशक के बीच लिखे गए अपने उपन्यासों में नागार्जुन ने हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था की इन्हीं विसंगतियों को उजागर किया है। जन आकांक्षा की उपेक्षा से उत्पन्न मोहभंग और जनमानस की निराशा–इनके तीखे–व्यंग्यों के रूप में जगह–जगह प्रकट हुई है।

विभिन्न घटनाओं का चित्रण इतना यथार्थ और प्रामाणिक है कि इनके आधार पर भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था के समकालीन इतिहास को भी समझा जा सकता है और उन सच्चाइयों की चरम परिणति आज की राजनीति और समाज में प्रकट तौर पर देखी जा रही है।

Nagarjuna is established as an advocate of public concern. The establishment of an egalitarian society and the urge for real freedom are prominent in his works. After independence, we adopted a democratic system of governance. Through the Preamble of the constitution set objectives such as establishing socialism, giving social, economic and political freedom to the citizens.

However, in order to achieve these objectives, in the democratically elected government, the effective role of the partner interest groups was established in the previous system. The name and format changed; However, the implications and priorities did not remain in the larger interest of the common people, but began to suit the various narrow interest groups. The influence of these interest groups on the system of governance, political protection and patronage given to their inappropriate activities, improper political interference in administration, undue benefits, dominated by character weakness, elements like dynasty, Chanda culture started dominating the governance system. As a result, instead of moving towards achieving the objective of giving social, economic and political freedom to the citizens, the economic disparity in the society increased. Over time, the growing consciousness promoted social discrimination, ethnic polarization and caste politics, the culmination of which we are currently witnessing. In his novels written between the fifth decade to the seventh decade, Nagarjuna has revealed these same discrepancies in our democratic system. The disillusionment caused by the neglect of public aspiration and the dismay of the public-as its sharp-sarcasm has manifested from place to place.

The depiction of various events is so accurate and authentic that on the basis of them one can understand the contemporary history of the Indian democratic system and the extreme culmination of those truths is being seen in today's politics and society.

मुख्य शब्द : जन सरोकार, समतामूलक समाज, लोकतांत्रिक, शासन व्यवस्था, प्रस्तावना, समाजवाद, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, स्वतंत्रता, निर्वाचित सरकार हित समूह, शासन–तंत्र, आर्थिक विषमता, सामाजिक चेतना, जातीय ध्रुवीकरण, जातिगत राजनीति।

Public Concern, Egalitarian Society, Democratic, Governance, Prologue, Socialism, Social, Economic, Political, Independence, Elected Government Interest Groups, Governance, Economic Disparity, Social Consciousness, Ethnic Polarization, Caste Politics.

प्रस्तावना

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत हमारे देश में लोकतांत्रिक शासन–व्यवस्था को अंगीकृत किया गया जो सम्प्रभुता, समाजवाद, पंथ निरपेक्षता एवं लोकतांत्रिक गणराज्य के उदात सिद्धान्तों पर आधारित थी। यह व्यवस्था वस्तुतः जनसाधारण की, जनसाधारण के लिए और जन साधारण द्वारा संचालित शासन व्यवस्था है। नागार्जुन के उपन्यासों की रचना का प्रारंभ भी लगभग इसी समय से होता है। इस प्रकार, स्वतंत्र भारत की लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था और नागार्जुन के विभिन्न उपन्यासों की रचना समकालीन रूप में आगे बढ़ती है। फलतः, उनके उपन्यासों में लोकतांत्रिक व्यवस्था से जुड़े तथ्यों को एक प्रमाणिक दस्तावेज के रूप में देखा जा सकता है।

अपने उपन्यासों में उपन्यासकार ने राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन और युगीन राजनीतिक स्थितियों के प्रायः प्रत्येक पक्ष को महाभारत के संजय की भांति चित्रवत् व्यवस्थित कर दिया है–

''बार–बार आगा पीछा सोंचकर कांग्रेस ने जब प्रांतों के शासन में हाथ बँटाना स्वीकार कर लिया तो जनता ने युग की ओर नई आशा से देखा। मिनिस्टरी कबूल कर लेने पर नेताओं का उत्तरदायित्व बेहद बढ़ गया। .....

जमींदार चुनाव में हारकर अपने अंधकारमय भविष्य की कल्पना करते हुए कछुए की भांति दुबके पड़े थे। अंदर ही अंदर कुछ सोंचकर अपने पैंतरे बदल डालने का उन्होंने निर्णय किया। परम्परा की दुहाई देकर कांग्रेसी मंत्रियों को उन्होंने धमकी दी – ''आपका खादी का कुर्त्ता पहले हम खून से तर कर देंगे, उसके बाद जाकर जमींदारी प्रथा उठा दीजिएगा।

मंत्रियों ने अपनी पीठ कर दी किसानों की ओर और मुँह कर दिया जमींदारों की ओर। दुनिया भर में बदनामी फैल गई कि बिहार में कांग्रेस पर जमींदारों का असर है। जवाहर लाल तक ने खुल्लम खुला यह बात कही ....''[1]

नागार्जुन साहित्य को समकालीन व्यक्ति एवं समाज की वास्तविक दशाओं एवं उनकी संभावनाओं को समझने–समझाने और उसके व्यवहारिक समाधान का एक साधन मानने वालों में से थे। तभी तो बलचनमा जैसे श्रीहीन पात्र के माध्यम से भी विद्यमान सामाजिक–राजनीतिक परिस्थितियों और उनमें छिपे भावी संघर्ष की संभावना को प्रकट करते दिखाई पड़ते हैं –

''फूलबाबू से मुझे इस बात की उमेद नहीं थी। ..... कैसे धोखे में पड़ा था। मेरा सारा मोह छनभर में फट गया। साफ–साफ लौकने लगा कि बाबू भैया लोग वहीं तक हमारा पच्छ लेंगे जहाँ तक उनका मतलब रहेगा। .... सोराजी हो गए थे तो क्या, थे तो आखिर बाबू–भैया ही न ..... ।

सच मानो भैया, उस बखत मेरे मन में बात बैठ गई कि जैसे अंगरेज बहादुर से सोराज लेने के लिए बाबू भैया लोग एक हो रहे हैं, हल्ला–गुला और झगड़ा–झंझट मचा रहे हैं, उसी तरह जन–बनिहार, कुली–मजूर और बहिया खबास लोगों को अपने हक के लिए बाबू–भैया से लड़ना पड़ेगा।''[2]

स्वातंत्रयोत्तर भारत में सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र में होने वाली गतिविधियों में आधुनिक शिक्षा–व्यवस्था के प्रभाव से उपजी जनचेतना और कतिपय कुरीतियों को समाप्त करने हेतु सरकारी गैर सरकारी स्तर पर किए जाने वाले प्रयास के फलस्वरूप आए बदलाव की स्थिति की एक बानगी उपन्यासकार ने इस प्रकार प्रस्तुत की है–

''किसान संगठित होने लगे। उनका नारा था – कमानेवाला खाएगा, इसके चलते जो कुछ हो। संगठन की यह हवा राजा बहादुर की भी जमींदारी में पहुँची। उनकी सूदखोरी एवं जमींदारशाही से सारा इलाका तंग आ चुका था। ..... गाँव से ही दो–तीन लीडर निकल आए। बलुआता पोखर के भिंडे पर किसान कुटी बन गई। किसान कुटी के लिए किसी ने लोटा दिया, किसी ने थाली दी। कुम्हार ने घड़े दिए, तौला दिया, कड़ाही दी।''[3]

औपन्यासिक चरित्रों के जातिगत एवं वर्णगत व्यवहारों, आचारों, व्यवहार एवं विकास की संभावना को अत्यंत बारीकी से युगीन स्थितियों से सम्बद्ध कर और उन्हें सामुदायिक रूप देकर उनके माध्यम से युगीन सामाजिक एवं राजनीतिक सन्दर्भों को प्रकट कराना नागार्जुन की विशेषता है। 'बाबा बटेसरनाथ' में वर्णित यह सन्दर्भ द्रष्टव्य है–

''आजादी के लिए जो समझदारी पहले थोड़े से पढ़े लिखे लोगों तक सीमित थी उसे गांधीजी आम पब्लिक तक ले आए! यही उनकी सबसे बड़ी खूबी मैं मानता हूँ।

नमक कानून तोड़ने का यज्ञ जिले में कहीं न कहीं आए दिन होता ही रहता था। दयानाथ ने सावन की पूर्णिमा के दिन यहीं मेरी छाँह में नमक बनाना शुरू किया। दारोगा को खबर दी जा चुकी थी .....।''[4]

आजादी मिली। हमने लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था को अंगीकार किया। शासन और सत्ता का स्वरूप भी बदला। किन्तु, व्यावहारिक स्तर पर जन सामान्य को पूर्व की भेदभाव मूलक व्यवस्था की दुश्वारियों से मुक्ति नहीं मिली। शोषणवादी व्यवस्था के अलम्बरदार– अपने हित साधन के लिए नये रंग–रूप और पैंतरों के साथ व्यवस्था पर हावी हो गए। बाबा बटेसरनाथ का यह प्रसंग देखिए–

''जज का यह खानदान जालिम जमींदारों का खानदान था और अपनी काली करतूतों के लिए जिले भर में बदनाम था। उनके यहाँ कई मशहूर वकील थे, जिला और प्रांत के शहरों में कई एक ऊँचे ऑफीसर भी थे उनमें से। इसी से हुकूमत की – मशीनरी हमेशा उनके अनुकूल रहती।

यह रिश्तेदारी टुनाई पाठक के लिए विधाता का वरदान थी। वह कई कुकर्म करके भी कानूनी तौर पर 'जज साहब का समधी' बना बैठा था। छोटे अफसरों का सम्मान पात्र और बड़े अफसरों का कृपा पात्र था।''[5]

वर्षों महात्मा गाँधी एवं अन्य महापुरुषों के सद्प्रयासों से स्वतंत्रता प्राप्ति के संघर्ष को जन आंदोलन का रूप दिया जा सका। इस दौरान लोगों को स्वराज की अच्छाइयां गिनाई जाती और लोग–बाग बड़ी–बड़ी अपेक्षाएं पाले– प्राणपण से स्वराज की प्राप्ति हेतु आहूत संग्राम में जुट जाते। त्याग और बलिदान की अनगिनत घटनाएं इस दौरान घटित हुईं। अंततः विभाजन के साथ ही सही, देश आजाद हुआ। स्वराज का सपना पूरा हुआ। हमने जनता की निर्णायक एवं केन्द्रीय भूमिका वाले शासन तंत्र को अपनाया। असमानता एवं अन्याय का पर्याय बन चुकी जमींदारी व्यवस्था का उन्मूलन हुआ। किन्तु, पुरानी व्यवस्था के ये साधक नये तंत्र के संचालन की भी केन्द्रीय भूमिका में पहुँच गए। और इस प्रकार, स्वराज प्राप्ति के दो दशक के अंदर ही आमजन के अरमानों पर पानी फिरने, और उससे उपजी निराशा, कुण्ठा एवं हितों की टकराहट का दौर चल पड़ा। 'कुंभीपाक' का यह प्रसंग द्रष्टव्य है–

''सत्ता और अवसरवादी राजनीति ने जिन पर नई कलई चढ़ा दी है, जमींदारों के वे वंशज किस किस्म का नैवेद्य किस तरह स्वीकार करते हैं और फिर भक्तजनों की कामना किस रूप में फलती है, ... सुमंगल की बातों से ..... थोड़ा बहुत मालूम हुआ।''[6]

निहित स्वार्थी तत्त्वों द्वारा आपसी गठजोड़ और लोकतांत्रिक व्यवस्था की तीनों इकाइयों–विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका में येन–केन प्रकारेन अपनी पैठ बनाकर अपने हित साधन हेतु कैसे–कैसे हथकंडे अपनाए गए। कैसे जन सामान्य के अरमानों पर पानी फेरा जाने लगा। नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में इसका यथार्थ और विस्तृत चित्रण किया है। 'हीरक जयन्ती' इसी पृष्ठभूमि में लिखा गया ऐसा उपन्यास है जिसमें स्वतंत्रता प्राप्ति के आरंभिक दशक में ही अपनी लोकतांत्रिक व्यवस्था में आई विकृतियों का यथार्थ चित्रण किया गया है। सरकार के एक मंत्री की हीरक जयन्ती के आयोजन को केन्द्र में रखकर रचनाकार ने निहित स्वार्थ की पूर्ति हेतु एकत्र हुए अलग–अलग पृष्ठ भूमि के मौका परस्तों चापलूसों हित साधकों का गठजोड़, सत्ता को अपनी मुट्ठी में करने हेतु उनके द्वारा अपनाए गए हथकंडे और जनता से विश्वास प्राप्त कर उनके हितों की अनदेखी करते शासक और प्रशासक के करतूतों की नंगी–सच्चाई को बेपर्द किया है। व्यक्तिगत हितों को हमेशा से जनहित और राष्ट्रहित के उपर रखने वाले पूर्व जमींदार राजा रेवती रमन सिंह, बाबू गोपी वल्लभ ठाकुर किसानों एवं मजदूरों का परम विरोधी रहा महंथ सीताशरण दास, मौका परस्ती एवं चाटुकारिता के बल पर संसद तक पहुँचे रामसागर राय, मौके का फायदा उठाकर किसानों के हितैशी से किसानों के दुश्मन जमींदार का चोला पहनकर और कपड़ों की डीलरी–और अन्य गतिविधियों के जरिए पर्याप्त धन संग्रह के बल पर एम.एल.ए. बनने वाले पंडित शिवदयाल पाठक, नेताजी की कृपा के प्रसाद स्वरूप एम. एल.सी. का पद पाने वाली मंजुमुखी देवी उर्फ देवी जी सरकारी विज्ञापन बटोरने के लिए साप्ताहिक प्रकाशित करने की आड़ में कागज का काला कारोबार करने वाला ईंट भट्ठा व्यवसायी बाबू धर्मराज सिंह, बड़े–बड़े व्यवसायी–सेठ लच्छोमल बजारिया और रामनिरंजन अग्रवाल, स्वार्थ साधन हेतु जातिगत घृणा और विद्वेष फैलाकर विधायक बनने वाले बाबू ब्रज बिहारी घोष, नेताजी और उनके शागिर्दों के लिए छद्म रूप से लेख लिखने वाले लेखक मृगांक, देवनंदन प्रसाद उर्फ ललन जी जैसे पत्रकार की पृष्ठभूमि, उनका पूर्ववृत्त और वर्तमान का परिचय व्यंग्यात्मक लहजे में प्रस्तुत करते हुए रचनाकार ने यह दिखलाने की कोशिश की है कि वर्षों के संघर्ष से प्राप्त की गयी आजादी का वास्तविक लाभ जन सामान्य को मिलना प्रारंभ हो, देश में अपनायी गयी लोकतांत्रिक व्यवस्था के मौलिक सिद्धान्तों के अनुरूप समतामूलक समाज की स्थापना और आर्थिक समृद्धि की राह पर अग्रसर दिखाई पड़े, इससे पूर्व ही शासन–प्रशासन उन तत्त्वों के प्रभाव में आ गया, जिन्होंने सदा ही राष्ट्र और सामुदायिक हितों की कीमत पर अपने स्वार्थों को साधा था और इस नयी व्यवस्था में घुन लगाने हेतु भी योजनाबद्ध तरीके से जुट गए थे। निर्वाचित सरकार की छत्रछाया में मंत्री बाबू नरपत सिंह उर्फ बाबूजी और इनके कृपापात्र चाटुकारों का स्वार्थ और पाखण्ड परवान चढ़ रहा है–

''और अपने यह बाबूजी ही क्या कम हैं! भारी पिशुन–बिलाड़ हैं बाबूजी! ज्नजातियों के नाम पर जाने कितने सेवा मंडल ..... कितने छात्रावास, कितने आश्रम स्थापित करवा रखे हैं अ–सवर्णों और परिगणितों के नाम, मगर उनमें पलता है कौन?

बाबूजी के आदमी एक ओर तो संत विनोबा के चरणों में भूमि का दानपात्र अर्पित करते हैं और दूसरी ओर हरिजन खेत–मजदूरों की झोपड़ियाँ हाथियों से उजड़वाते हैं ....।''[07]

विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा हित साधकों से चन्दा लेना और बदले में उन्हें संरक्षण और छूट देना होता था। चंदा संस्कृति के संबंध में 'हीरक जयन्ती' का यह प्रसंग द्रष्टव्य है –

''हमारा व्यापारी समाज तो सर्वोदय को अपना आदर्श मानता है। ....। हम किसी को नाराज नहीं करते हैं। कांग्रेसी, सोशलिस्ट ..... कौन नहीं हमसे चंदा ले जाता है?

तभी तो बरकत हुई है! आज आपकी दो मिले हैं चीनी की, लोहा और सीमेंट का कारोबार है। .....। पिछले साल कारखानों में हड़ताल हो गई तो सरकार ने आपके उद्योग की ही नहीं, सम्मान की भी हिफाजत की थी।''[8]

सरकार में बैठे लोग जनमत, लोकतांत्रिक व्यवस्था के अधीन कायम जनहित की अनदेखी कर न सिर्फ इन स्वार्थी हित साधकों को संरक्षण देते थे, इनकी छत्रछाया में तस्करी जैसे अपराध और राष्ट्र विरोधी गतिविधियों को भी इनका प्रश्रय प्राप्त था। तस्करी के आरोप में पुलिस कस्टडी में रखे गए मंत्री पुत्र की बाइज्जत रिहाई की बानगी देखिए –

''अपने आका की डाँट डपट खाकर बेचारे मिस्टरसेन को मान लेना पड़ा कि ट्रक में तम्बाकू ही थी, गाँजा नहीं था और नगेन्द्र नारायण सिंह रात को साढ़े बारह बजे पुलिस की हाजत से छुटकारा पा गए। उनकी ट्रक सही–सलामत नेपाल भारत सीमा के इस पार आ पहुँची।''[9]

लोकतंत्र की जनसाधारण के लिए जन साधारण की जनसाधारण द्वारा संचालित शासन की अवधारणा से इतर शासन–तंत्र के निर्वाचित प्रतिनिधियों की प्राथमिकताओं में अपना और अपने अनुयायियों का हित प्रबल हो चला। जनहित के फैसले भी इन्हें ध्यान में रखकर लिए जाने लगे। प्रशासन में पक्षपातपूर्ण हस्तक्षेप के मामले बढ़ने लगे। नियुक्तियों, तबादलों और पदोन्नतियों में योग्यता की उपेक्षा करते हुए निहित स्वार्थ की पूर्ति हेतु जातिगत और व्यक्तिगत हित को वरीयता दी जाने लगी। राजनीतिक क्षेत्र में उजागर चारित्रिक पतन को उपन्यासकार ने इस प्रकार व्यक्त किया है–

''पुलिस विभाग में नियुक्तियों तबादलों, प्रमोशनों का आधार भी खास–खास जातियों के हितों को सामने रखकर ही बनाया जाने लगा था। योग्यता की उपेक्षा पहले से ज्यादा होने लगी। राजनीतिक दलपतियों के हस्तक्षेप अकसर सुने जाने लगे।''[10]

प्रशासन में राजनीतिक आकाओं के अनुचित और पक्षपातपूर्ण हस्तक्षेप के कारण प्रशासनिक तंत्र पर शासनतंत्र की पकड़ कमजोर हुई। जनसाधारण के प्रति प्रशासन तंत्र की निष्ठा भी कायम नहीं रह सकी और भ्रष्ट आचरण के रूप में जनहित, समाजहित और राष्ट्रहित को क्षति पहुँचाने वाली गतिविधियां धड़ल्ले से चलने लगीं। शासन के बाबूजी जैसे सूत्रधारों की छत्रछाया में प्रशासनिक निष्ठा का सौदा कर तिलकधारी दास जैसे स्वार्थी तत्व स्वराज से जुड़ी आशाओं और अपेक्षाओं पर पानी फेरने में जुट गए थे।

''पुस्तकें मंजूर करनेवाली कमेटी के सदस्यों की पोल उसे अच्छी तरह मालूम थी। पाठ्य–पुस्तकों का अवैध व्यापार .... विभिन्न जिला बोर्ड के स्कूलों में 'स्टेशनरी' के नाम पर रद्दी माल की सप्लाई ..... बुनियादी तालीम के क्षेत्रों में चर्खों और चटाइयों तक का आर्डर बटोर लाना ..... ग्रामोद्योग के नाम घी, तेल और खादी का धंधा ....बाबू तिलकधारी दास को जाने कितने कामों का तजुर्बा हासिल था।''[11]

लम्बे संघर्ष और अनगिनत कुर्बानियों के बल पर हासिल स्वराज की जमीनी हकीकत उपन्यासकार की आँखों देखी घटनाओं के रूप में उनके 'कुंभीपाक', 'हीरक जयन्ती' और अन्य परवर्ती उपन्यासों में विम्बित है। शासन–प्रशासन के सूत्रधारों का स्वरूप तो बदला; किन्तु, निहितार्थ बहुत हद तक पूर्ववत् ही रहा। जन साधारण के प्रति तंत्र की ऐसी ही उदासीनता और नाइंसाफी से उपजी निराशा व्यंग्य के रूप में मिनिस्टर के कोठी पर तैनात चपरासी के माध्यम से अभिव्यक्ति पाती है–

''अरे इन्हीं कोठियों के अंदर तो अन्याय पनाह लेता है आकर! सरकार अभी इन्हीं कोठियों और बंगलों में कैद है, उसे तुम तक पहुँचने में दस–बीस वर्ष लग जाएँगे अभी!''[13]

लोकतांत्रिक तरीके से निर्वाचित सरकार के चारित्रिक दुर्बलता के शिकार एक मंत्री की करतूतों को उनकी कृपा पात्र देवी जी के आत्म पृष्ठावलोकन के माध्यम से उपन्यासकार ने बेपर्द किया है। व्यापारियों की पैरवी कर अनुचित लाभ दिलाना, नकली प्रतिष्ठानों के नाम पर जनता के पैसों का बंदरवाट, कोटा निर्धारण के जरिए मुनाफाखोरी और अवैध कारोबार को संरक्षण देने हेतु प्रशासन में दखलंदाजी जैसे जनविरोधी कार्यों का उल्लेख इस क्रम में हुआ है। द्रष्टव्य है–

''एक बार डायरेक्टर से मतभेद का खतरा पैदा होने की शंका हुई तो बाबूजी ने विभागीय सेक्रेटरी पर जोर डालकर एडिशनल डायरेक्टर का पद कायम करवा लिया और पीछे उस पद पर नगेंदर का एक सहपाठी बैठाया गया। महिला मंडिल को पिछले सात वर्षों में अनुदान और चंदे के तौर पर लाखों की रकम मिली है, लेकिन आज तक उसका हिसाब लोगों के सामने नहीं आया।''[14]

स्वराज प्राप्ति के बीस–पच्चीस वर्षों बाद भी बहुसंख्यक आबादी जहालत, शोषित और पीड़ित गरीब का जीवन व्यतीत करने को बाध्य थी। राजनीतिक दलों की गतिविधियों एवं विभिन्न स्तरों पर होनेवाले चुनावों से इनके बीच आंशिक चेतना जागृत हुई तो थी; किन्तु, शासन तंत्र पर हावी–निहित स्वार्थी तत्त्वों के कारण स्वराज का अपेक्षित लाभ उन तक नहीं पहुँच पा रहा था। उपन्यासकार के शब्दों में–

''नेताओं–ऑफिसरों–पुलिसवालों–साहूकारों और बड़े किसानों की मिली–भगत देहाती श्रमिक वर्ग के संकटों को कई गुना अधिक बढ़ा रही थी।''[15]

समय के साथ राजनीतिक चेतना के विकास, विधायिका–कार्यपालिका के बदलते स्वरूप और जातीय आधार पर इसके पल्लवित पुष्पित होने का संकेत भी उपन्यासकार ने अपने अप्रकाशित उपन्यास में किया है–

''सरसठवाले निर्वाचन के बाद छोटी जातियों के विधायक अधिक संख्या में मंत्री–उपमंत्री होने लगे। प्रशासन की कुर्सियों पर उनका दबाव अधिकाधिक बढ़ता गया।

निम्न वर्ग का गूँगा विधायक भी पुलिसवालों को फटकारने लगा। बुद्धू से बुद्धू देहाती भी अपनी बिरादरी से अधिकाधिक चिपकता गया .....।

भरतपुरा अंचल का यादव विधायक पहली बार चुना गया था। संविद मंत्रिमंडल में वह मिनिस्टर बना। ..... दो बार दल बदले। गाँजा के तस्कर व्यापारियों का एक गिरोह नाव समेत पकड़ा गया तो उसी की दौड़–धूप से सकुशल छूट गया .....।''

निष्कर्ष

निष्कर्ष के तौर पर कह सकते हैं कि स्वतंत्र भारत की समकालीन लोकतांत्रिक शासन–व्यवस्था की सच्चाई नागार्जुन के उपन्यासों में यथार्थ रूप में चित्रित हैं।

शासन के सूत्रधारों द्वारा जनहित की उपेक्षा और निहित स्वार्थी तत्वों के हित में कार्य करने से उत्पन्न निराशा और मोहभंग की स्थिति नागार्जुन के उपन्यासों में प्रमुखता से चित्रित है। कथ्य को सृजन के केन्द्र में रखकर रचना करने वाले और साहित्य को समाजोपयोगी साधन माननेवाले रचनाकार का शासन–प्रशासन की इन स्थितियों से निराश होना स्वाभाविक था। फलतः, व्यंग्य की अपनी चिर–परिचित शैली में शासक को आगाह करने और जनसामान्य को जागृत करने की कोशिश उपन्यासकार ने की है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले दशक से आठवें दशक तक लिखित अपने विभिन्न उपन्यासों में नागार्जुन ने शासनतंत्र की जन आकांक्षाओं के प्रति उदासीनता, निहित स्वार्थी तत्त्वों के साथ गठजोड़, अनुचित संरक्षण, भ्रष्टाचार, प्रशासन में अनुचित राजनीति के हस्तक्षेप, जैसे सन्दर्भों का चित्रण प्रमुखता से किया है। ये ऐसे कारक हैं, जिन्होंने संविधान की प्रस्तावना में अंकित उद्देश्यों को जनतांत्रिक शासन व्यवस्था के माध्यम से प्राप्त करने में बाधक का काम किया। इससे समतामूलक समाज और समाजवाद की स्थापना की जगह आर्थिक विषमता, जातीय ध्रुवीकरण और सामाजिक भेदभाव एवं कटुता का जो दौर प्रारंभ हुआ उसकी चरम परिणति आज की राजनीति और समाज में देखने को मिल रही है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *'रतिनाथ की चाची'; पृ०–73/ नागार्जुन रचनावली, भाग–4, राजकमल प्रकाशन,*
2. *'बलचनमा'; पृ० 186/नागार्जुन रचनावली, भाग–4, राजकमल प्रकाशन,*
3. *रतिनाथ की चाची; पृ०–73/नागार्जुन रचनावली–भाग–4 (राजकमल प्रकाशन)*
4. *बाबा बटेसरनाथ; पृ०–403–407/ नागार्जुन रचनावली–भाग–4 (राजकमल प्रकाशन)*
5. *बाबा बटेसरनाथ; पृ०–416/ नागार्जुन रचनावली–भाग–4 (राजकमल प्रकाशन)*
6. *कुंभीपाक, पृ०–139/ नागार्जुन रचनावली–भाग–5 (राजकमल प्रकाशन)*
7. *हीरक जयन्ती, पृ०सं०–272/ नागार्जुन रचनावली–भाग–5 (राजकमल प्रकाशन)*
8. *हीरक जयन्ती, पृ०सं०–273 / नागार्जुन रचनावली–भाग–5 (राजकमल प्रकाशन)*
9. *हीरक जयन्ती, पृ०सं०–293 / नागार्जुन रचनावली–भाग–5 (राजकमल प्रकाशन)*
10. *गरीबदास; पृ०–481/नागार्जुन रचनावली–भाग–5 (राजकमल प्रकाशन)*
11. *कुंभीपाक, पृष्ठ संख्या–135–136 / नागार्जुन रचनावली–भाग–5 (राजकमल प्रकाशन)*
12. *कुंभीपाक, भाग–05, पृष्ठ संख्या–175 / नागार्जुन रचनावली–भाग–4 (राजकमल प्रकाशन)*
13. *कुंभीपाक, भाग–05, पृष्ठ संख्या–175 / नागार्जुन रचनावली–भाग–4 (राजकमल प्रकाशन)*
14. *हीरक जयन्ती, पृ०सं०–251 / नागार्जुन रचनावली–भाग–5 (राजकमल प्रकाशन)*
15. *अप्रकाशित अधूरा उपन्यास, पृष्ठ–561/ नागार्जुन रचनावली–भाग–5 (राजकमल प्रकाशन)*